सकता। परोक्ष रूप से अर्जुन को श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार कर्म करने का परामर्श दिया गया है।

16.2

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।४९।।

दूरेण=अत्यन्त; **हि**=निस्सन्देह; **अवरम्**=निन्दनीय; **कर्म**=सकामकर्म; **बुद्धि-योगात्**=कृष्णभावनामृत से; **धनंजय**=हे अर्जुन; **बुद्धौ**=इस बुद्धियोग का; **शरणम्**=आश्रय; **अन्विच्छ**=ग्रहण कर; **कृपणाः**=दीन हैं; **फलहेतवः**=कर्म फल की इच्छा वाले।

अनुवाद

हे धनंजय! भक्तियोग के द्वारा सब प्रकार के निकृष्ट सकाम कर्मों से मुक्त होकर पूर्ण रूप से उसी बुद्धियोग की शरण हो जा। जिन्हें कर्मफल की वासना है, वे तो अत्यन्त दीन हैं।।४९।।

तात्पर्य

जो भगवान् के नित्य दास के रूप में अपने स्वरूप को वास्तव में जान जाता है, वह पुरुष कृष्णभावनाभावित क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य सब कर्मों को त्याग देता है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, **बुद्धियोग** का अर्थ भगवद्भक्तियोग है। भक्ति जीव का स्वरूपभूत कर्म है। जो कृपण अर्थात् दीन हैं, वे ही अपने कर्मफलों को भोगने की इच्छा रखते हैं; यह अधिकाधिक बन्धनकारी सिद्ध होती है। कृष्णभावनाभावित कर्मों के अतिरिक्त अन्य सब कार्य निन्द्य हैं, क्योंकि वे कर्ता को जन्म-मृत्यु के चक्र में ही नित्य बाँधे रखते हैं। अतः कर्मफल का कारण बनने की इच्छा कभी न करे। प्रत्येक क्रिया कृष्णभावना से भावित, श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए ही होनी चाहिए। कृपण दैववश अथवा परिश्रम से प्राप्त हुए वैभव का सदुपयोग करना नहीं जानते। जीवन की कृतार्थता इसी में है कि अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को कृष्णभावनाभावित क्रियाओं में नियोजित किया जाय। परन्तु मन्दभाग्य कृपण अपनी मानवी शक्ति का उपयोग भगवत्सेवा में नहीं करते।

17.2

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।५०।।

बुद्धियुक्तः=भगवद्भक्ति-परायण पुरुष; **जहाति**=मुक्त हो सकता है; **इह**=इसी जीवन में; **उभे**=दोनों; **सुकृतदुष्कृते**=पुण्य और पाप से; **तस्मात्**=इसलिए; **योगाय**=भक्ति के लिए; **युज्यस्व**=चेष्टा करने में युक्त रह; **योगः**=कृष्ण-भावना ही; **कर्मसु**=सब कर्मों में; **कौशलम्**=कुशलता है।

अनुवाद

भगवद्भक्ति के परायण हुआ मनुष्य इसी जीवन में पुण्य और पाप, दोनों से